महाकवि धनपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

वचनं श्री धनपालस्य चन्दनं मलयस्य च ।
सरसं हृदि विन्यस्य कोऽभून्नाम न निर्वृतः ।।[1]

(धनपाल कवि के सरस वचन और मलयगिरि के सरस चन्दन को अपने हृदय में रखकर कौन सहृदय तृप्त नहीं होता ।)

संस्कृत भाषा के गद्यकाव्य का श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व करने वाले तीन महाकवि, विद्वज्जनों में अत्यन्त विख्यात हैं–दण्डी, सुबन्धु और बाण । संस्कृत-गद्य साहित्य की एक प्रौढ रचना "तिलकमञ्जरी" के प्रणेता महाकवि धनपाल भी उस कवित्रयी के मध्य गौरवपूर्ण पद पाने के योग्य हैं ।

धनपाल, संस्कृत और प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे । अपने प्रौढ ज्ञान के कारण वे "सिद्धसारस्वत धनपाल"[2] के नाम से प्रसिद्ध थे । उन्होंने गद्य और पद्य, दोनों में अनेक रचनायें की हैं, किन्तु उनकी "तिलकमञ्जरी" अपने शब्द सौन्दर्य, अर्थगाम्भीर्य, अलङ्कार नैपुण्य, वर्णन वैचित्र्य, रस-रमणीयता और भाव प्रवणता के कारण, लगभग एक हजार वर्षों से विद्वानों का मनोरञ्जन करती चली आ रही है । प्रायः सभी आलोचक "तिलकमञ्जरी" को "कादम्बरी" की श्रेणी में बिठाने के लिए एक मत हैं ।

जीवन परिचय तथा समय—गद्य काव्य की परम्परा के अनुसार कवि ने तिलकमञ्जरी के प्रारम्भिक पद्यों[3] में अपना तथा अपने पूर्वजों का परिचय दिया है । इसके अतिरिक्त, प्रभावक चरित (प्रभाचन्द्राचार्य) के "महेन्द्रसूरि प्रबन्ध," प्रबन्ध चिन्तामणि (मेरुतुङ्गाचार्य) के "महाकवि धनपाल प्रबन्ध" सम्यक्त्व-सप्ततिका (संघतिलक सूरि) भोज प्रबन्ध (रत्न मन्दिर गणि), उपदेश कल्पवल्ली (इन्द्र हंसगणि), कथारत्नाकर (हेम विजय गणि), आत्मप्रबोध (जिनलाभ सूरि), उपदेश प्रासाद (विजय लक्ष्मी सूरि) आदि ग्रन्थों में कवि का परिचय स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है ।[4]

धनपाल, उज्जयिनी के निवासी थे । ये वर्ण से ब्राह्मण थे । इनके पितामह "देवर्षि" मध्यदेशीय सांकाश्य नामक ग्राम (वर्तमान फ़रुखाबाद जिला में "संकिस" नामक ग्राम) के मूल निवासी थे और उज्जयिनी में आ बसे थे । इनके पिता का नाम था सर्वदेव, जो समस्त वेदों के ज्ञाता और क्रियाकाण्ड में पूर्ण निष्णात थे । सर्वदेव के दो पुत्र–प्रथम धनपाल और द्वितीय शोभन, तथा एक पुत्री-सुन्दरी थी ।

१—'तिलकमञ्जरी' पराग टीका, प्रकाशक, लावण्य विजय सूरीश्वर ज्ञान मन्दिर, बोटाद (सौराष्ट्र) (संकेत-तिलक० पराग०) पृष्ठ २४, प्रस्तावना में लिखित ।

२—'समस्यामर्पयामास सिद्धसारस्वतः कविः' प्रभावक चरित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ईस्वी सन् १९४०

३—तिलकमञ्जरी, पद्य नं० ५१, ५२, ५३

४—तिलक० पराग० प्रस्ताविक पृष्ठ २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनपाल ने बचपन से ही अभ्यास करके सम्पूर्ण कलाओं के साथ वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, पुराण आदि का प्रगाढ़ अध्ययन किया । इनका विवाह 'धनश्री' नामक अतिकुलीन कन्या के साथ हुआ ।

कहा जाता है कि धनपाल के अनुज शोभन ने महेन्द्र सूरि के निकट जैन-दीक्षा स्वीकार की थी । धनपाल यद्यपि कट्टर ब्राह्मण थे किन्तु अपने अनुज से प्रभावित होकर अन्त में उन्होंने भी जैन धर्म स्वीकार किया ।[1]

धनपाल, मालव देश के अधिपति धाराधीश मुञ्जराज (वि० सं० १०३१-१०७८) तथा उनके भ्रातृ पुत्र भोजराज के सभापण्डित थे । भोजराज का राज्याधिरोहण काल वि० सं० १०७८ है । अतः धनपाल का समय निश्चित रूप से विक्रम की ११ वीं शताब्दी समझना चाहिए ।[2]

रचनायें—धनपाल ने संस्कृत और प्राकृत में अनेक रचनायें की हैं । उनकी प्राकृत की रचनाओं में "पाइयलच्छी नाममाला" "ऋषभ पञ्चाशिका[3]" और 'वीरथुई' प्रसिद्ध हैं ।

ऋषभ पञ्चाशिका और वीरथुई में क्रमशः भगवान् ऋषभदेव और महावीर की अनेक पद्यों में स्तुति की गई है ।

संस्कृत में जो स्थान अमरकोश का है, प्राकृत में वही स्थान पाइयलच्छी-नाम माला का है । धनपाल ने अपनी छोटी बहन सुन्दरी के लिए विक्रम सं० १०२९ (ई० सन् ९७२) में धारा नगरी में इस कोश की रचना की थी । प्राकृत का यह एक मात्र कोश है । ब्यूलर के अनुसार इसमें देशी शब्द, कुल एक चौथाई हैं । बाकी तत्सम और तद्भव हैं ।[4] इसमें २७९ गाथायें आर्या छन्द में हैं जिनमें पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं ।

इनके अतिरिक्त, सत्यपुरीय-महावीर-उत्साह, श्रावक विधि प्रकरण, प्राकृत नाम माला, शोभन स्तुति वृत्ति आदि ग्रन्थ भी उन्होंने लिखे हैं ।[5] शोभन स्तुति-वृत्ति, अपने अनुज शोभन सूरि द्वारा लिखित "शोभन स्तुति" पर धनपाल का टीका ग्रन्थ है ।

तिलकमञ्जरी—धनपाल ने अनेक ग्रन्थों की रचना की किन्तु जिस ग्रन्थ की रचना से उन्हें सबसे अधिक यश मिला उसका नाम है-'तिलकमञ्जरी' यह संस्कृत भाषा का श्रेष्ठ गद्य काव्य है । इसमें विद्याधरी तिलकमञ्जरी और समरकेतु की प्रणय-गाथा चित्रित की गई है । इस ग्रन्थ की रचना का

१—प्रबन्ध चिन्तामणि (धनपाल प्रबन्ध) तथा प्रभावक चरित (महेन्द्रसूरि प्रबन्ध)

२—तिलक० पराग० 'प्रास्ताविक' पृ० २६

३—जर्मन प्राच्य विद्या समिति की पत्रिका के ३३ वें खण्ड में प्रकाशित । ई० सन् १८९० में काव्य माला के सातवें भाग में, बम्बई से प्रकाशित । भावचूर्णि ऋषभ पञ्चाशिका के साथ वीरथुई, 'देवचन्द्र लाल भाई ग्रन्थ माला' बम्बई की ओर से सन् १९३३ में प्रकाशित.

४—गेओर्ग ब्यूलर द्वारा संपादित होकर गोएरिंगन (जर्मनी) से सन् १८७९ में प्रकाशित । गुलाब भाई लालूभाई द्वारा संवत् १९७३ में भावनगर से प्रकाशित । पं० बेचरदास जी द्वारा संशोधित होकर, बम्बई से प्रकाशित ।

५—तिलक० पराग० पृ० २८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्देश्य स्वयं कवि ने इस प्रकार लिखा है—'समस्त वाङ्मय के ज्ञाता होने पर भी जिनागम में कही गई कथाओं के जानने के उत्सुक, निर्दोष चरित वाले, सम्राट् भोजराज के विनोदन के लिए, मैंने इस चमत्कार से परिपूर्ण रसों वाली कथा की रचना की। (तिलकमञ्जरी, पद्य नं० ५०)

कहा जाता है कि तिलकमञ्जरी की समाप्ति के पश्चात् भोजराज ने स्वयं इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा। ग्रन्थ की अद्भुतता से प्रभावित होकर भोजराज ने धनपाल से यह इच्छा व्यक्त की कि उन्हें इस काव्य का नायक बना दिया जाय। इस कार्य के उपलक्ष में कवि को अपरिमित धनराशि उपहार में प्रदान किए जाने का आश्वासन भी दिया गया, किन्तु धनपाल ने ऐसा करने से अस्वीकार कर दिया। इस पर भोजराज अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और तत्काल उन्होंने वह समस्त रचना अग्निदेव को भेंट कर दी। इस घटना से धनपाल अत्यन्त उद्विग्न हो गए। उनकी नौ वर्ष की बाल पण्डिता पुत्री ने उनके उद्वेग का कारण जानकर, उन्हें धीरज बन्धाया और तिलकमञ्जरी की मूलप्रति का स्मरण करके उसका आधा भाग पिता को मुंह से बोल कर लिखवा दिया। धनपाल ने शेष आधे भाग की पुनः रचना करके तिलकमञ्जरी को सम्पूर्ण किया।[1]

यद्यपि समस्त कथा गद्य में कही गयी है किन्तु ग्रन्थ के प्रारम्भ में अनेक वृत्तों में ५३ पद्य हैं। इनमें मंगलाचरण, सज्जन स्तुति एवं दुर्जननिन्दा, कविवंश परिचय आदि उन सभी बातों का वर्णन है जिनका शास्त्रीय दृष्टि से गद्य काव्य के प्रारम्भ में वर्णन होना चाहिए।[2] इन पद्यों में धनपाल ने अपने आश्रयदाता सम्राट्, उनके परमार वंश और उनके पूर्वजों श्री बैरिसिंह, श्री हर्ष, सीयक, सिन्धुराज, वाक्पतिराज का भी वर्णन किया है।

तिलकमञ्जरी और कादम्बरी की तुलना—कादम्बरी तथा तिलकमञ्जरी में अनेक प्रकार से समानता है। सच बात तो यह है कि तिलकमञ्जरी की रचना ही कादम्बरी के अनुकरण पर है। तिलकमञ्जरी की कवि प्रशस्ति में जितना आदर धनपाल ने कादम्बरीकार बाण को दिया, उतना किसी अन्य दूसरे कवि को नहीं। अपने से पूर्ववर्ती प्रायः सभी कवियों का यशोगान, धनपाल ने एक एक पद्य में किया है किन्तु बाण का दो पद्यों में। (तिलकमञ्जरी पद्य नं० २६, २७)

शास्त्रीय दृष्टिकोण से तुलना करने पर दोनों कथाओं में अत्यधिक साम्य प्रतीत होता है। कवि कल्पित होने से कादम्बरी भी कथा है और तिलकमञ्जरी भी।[3] जैसे कादम्बरी में मुक्तकादि चारों प्रकार की गद्य का प्रयोग होने पर भी 'उत्कलिकाप्राय' गद्य की बहुलता है उसी प्रकार तिलकमञ्जरी में भी।[4]

१—प्रबन्ध चिन्तामणि (धनपाल प्रबन्ध)

२—'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्। क्वचिदत्रभवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके। आदौ पद्य नमस्कारः खलादेर्वृतकीर्तनम्। ....कवेर्वंशानु कीर्तनम्। अस्पामन्य कवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित्' साहित्य दर्पण, ६, ३३२-३३४

३—'आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्ध कल्पना कथा' अमरकोश'।

४—'वृत्तगन्धोज्झित गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च। भवेदुत्कालिकाप्रायं चूर्णकञ्चचतुर्विधम्॥
आद्यं समासरहितं वृत्त भागयुतं परम्। अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यञ्चाल्पसमासकम्॥'
साहित्य दर्पण ६, ३३०, ३३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कादम्बरी का नायक चन्द्रापीड, अनुकूल एवं धीरोदात्त है। तिलकमञ्जरी का नायक समरकेतु भी अनुकूल एवं धीरोदात्त है।[1] कादम्बरी की नायिका गन्धर्वों के कुल में उत्पन्न, कादम्बरी, विवाह के पहले परकीया एवं मुग्धा तथा विवाह के पश्चात् स्वकीया एवं मध्या है। इसी प्रकार तिलकमञ्जरी की नायिका विद्याधरी तिलकमञ्जरी पहले परकीया एवं मुग्धा तथा पश्चात् स्वकीया एवं मध्या है। कादम्बरी में, पूर्वार्द्ध में तथा कुछ उत्तरार्द्ध में 'पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार, तथा शेष उत्तरार्ध में 'करुण विप्रलम्भ शृंगार' प्रधान रस है। तिलकमञ्जरी में केवल 'पूर्वराग विप्रलम्भ शृंगार' ही प्रधान रस है। कादम्बरी और तिलकमञ्जरी दोनों की पाञ्चांली रीति और माधुर्य गुण है।[2]

दोनों कथाओं का प्रारम्भ पद्यों से होता है। इन पद्यों के विषय सज्जन-दुर्जन-स्तुति निन्दा, कवि-वंश वर्णन आदि भी समान हैं। इन पद्यों में बाण ने 'कथा' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। धनपाल ने भी इन प्रारम्भिक पद्यों में गद्य, कथा और चम्पू के सम्बन्ध में अपनी धारणा स्पष्ट की है।[3] दोनों कथाओं में गद्य के बीच में कुछ पद्यों का प्रयोग किया गया है।[4]

कादम्बरी तथा तिलकमञ्जरी के कथानक में भी यत्र तत्र समानता दिखाई देती है। कादम्बरी में उज्जयिनी के राजा तारापीड़ और उनकी पत्नी विलासवती, निःसंतान होने के कारण अत्यन्त दुःखी हैं।

१—'अनुकूल एकनिरतः'
'अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः। स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढ़ व्रतः कथितः॥

२—कादम्बरी—कल्पलता टीका (हरिदास सिद्धान्त वागीश भट्टाचार्य) 'साहित्य दर्पण' का स्वरूपनायिकादि निरूपण तथा तिलकमञ्जरी (पराग टीका) की प्रस्तावना।
'परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा। कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना।
प्रथमावतीर्ण यौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥
परिणयात् परन्तु स्वकीया मध्या च मन्तव्या, 'साहित्य दर्पण'
'यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्ट मुपैति विप्रलम्भोऽसौ'
'श्रवणाद्दर्शनादवापि मिथः संरूढरागयोः। दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते।'
'यूनो रेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये। विमनायते यदेकस्तदा भवेत् करूणविप्रलम्भाख्यः॥
चित्तद्रवी भावमयो ह्लादो माधुर्य मुच्यते'
'समस्तपञ्चषपदोबन्धो पाञ्चालिका मतां' साहित्य दर्पण

३—कादम्बरी पद्य नं० ८, ९ तथा तिलकमञ्जरी पद्य नं० १५, १६, १७, १८.

४—कादम्बरी—'स्ततमश्रु स्नात……'शुक प्रसंशा प्रकरण (पूर्वभाग-कथामुख)
'दूरं मुक्तालतया……' मदनाकुलमहाश्वेतावस्था प्रकरण (पूर्वभाग-कथा)
तिलक मंजरी—'यस्य दोष्णि स्फुरद्धेतौ……' 'लतावनपरिक्षिपे……'] मेघवाहन नृप वर्णन प्रसंग
'अन्तर्दग्धागुरुशुचावाप……' 'दृष्ट्या वैरस्य वैरस्य……'] मेघवाहन नृप वर्णन प्रसंग
'आढ्यश्रोणिदरिद्रमध्यसरणि……' रानी मदिरावती का वर्णन।
'विपदिव विरता विभावरी……' बंदिगान.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलासवती ने महाभारत के इस कथन को सुन रखा था कि—'सन्तानहीन जनों को मृत्यु के पश्चात् पुण्य लोक नहीं मिलता, क्योंकि पुत्र ही अपने माता-पिता की 'पुम्' नामक नरक से रक्षा करता है।'[1]

तिलकमञ्जरी में—अयोध्या के राजा मेघवाहन और उनकी पत्नी मदिरावती, अनपत्यता के कारण दुःखी है। इसी प्रकरण में, गुरुओं के द्वारा राजा को इस प्रकार मानो संबोधित किया गया है—'हे विद्वन् ! अन्य प्रजाजनों की रक्षा से क्या लाभ, पहले 'पुम्' नामक नरक से अपनी रक्षा तो कीजिए।[2]

पुत्रोत्पत्ति के निमित्त, दोनों कथाओं में समानरूप से देवताओं की पूजा, ऋषिजनों की सपर्या, गुरुजनों की भक्ति आदि का विधान बताया गया है।

तिलकमञ्जरी के, अयोध्या नगरी के बाहर उद्यान में सुशोभित शुक्रावतार नामक सिद्धायतन (जैन मन्दिर) की तुलना, कादम्बरी में उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर से की जा सकती है। भोजराज ने धनपाल से, अपने को तिलकमञ्जरी का नायक बनाने के साथ साथ शुक्रावतार के स्थान पर 'महाकाल' यह परिवर्तन करने की इच्छा भी प्रकट की थी।

कादम्बरी, जैसे लौकिक एवं दिव्य कथानक का सम्मिश्रण है उसी प्रकार तिलक मंजरी में भी लौकिक एवं अलौकिक पात्रों के कथानक का संयोजन किया गया है। विद्याधरी तिलकमञ्जरी, ज्वलजप्रभ नाम का वैमानिक, नन्दीश्वर नाम का द्वीप उसमें रतिविशाला नाम की नगरी, सुमाली नाम का देव तथा स्वयंप्रभा नाम की उसकी देवी, क्षीरसागर से निकला चन्द्रातप नाम का हार, प्रियंङ्गु सुन्दरी नाम की देवी वेताल आदि, तिलकमञ्जरी में, अलौकिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शैली की दृष्टि से भी दोनों कथाओं में पर्याप्त समानता है। प्रत्येक घटना तथा वर्णन को शब्द तथा अर्थ के विविध अलंकारों से बोझिल बनाकर कहना; जैसा कादम्बरी में वैसा ही तिलक मंजरी में। वैसे तो बाण सभी अलंकारों के प्रयोग में प्रवीण है किन्तु 'परिसंख्यालंकार' पर उनका विशेष अनुराग है। राजा शूद्रक तथा तारापीड़ के वर्णन में उनके परिसंख्यालंकार का चमत्कार देखिए—'यस्मिंश्च राजनि जित जगति परिपालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, इतेषु के शग्रहाः…………'(शूद्रक वर्णन)—'यस्मिश्च राजनि गिरीणां विपक्षता, प्रत्ययानां परत्वम्…… (तारापीड़वर्णन)।

धनपाल भी परि संख्यालंकार के अत्याधिक प्रेमी हैं। मेघवाहन राजा के वर्णन में प्रयुक्त परिसंख्यालंकार कादम्बरी के उपर्युक्त परिसंख्यालंकार से अत्यन्त समानता रखता है—'यस्मिश्च राजन्यनुर्वनित शास्त्र मार्गे प्रशासति वसुमति धातूनां सोपसर्गत्वम्, इक्षुणां पीडवम्, पक्षिणां दिव्यग्रहणम्, पदानां विग्रहः तिमीनां गलग्रहः, गूढ़चतुर्थकानां पादाकृष्टयः, कुकविकाव्येषु यतिभ्रंशदर्शनम्, उद्घीनामवृद्धिः, निधुवनक्रीडासु तर्जनताडनानि। प्रतिपक्षक्षयोद्यतमुनि कथासु कुशास्त्रश्रवणम्, शारीणामक्षप्रसरदोषेण परस्पर बन्धव्यधमारणानि, वैशेषिक मते द्रव्यप्राधान्यं गुणानामुपसर्जनभावो बभूव।' (तिलक० पराग पृ० ६७-६८)

१—अपुत्राणां किल न सन्ति लोकाः शुभाः पुन्नाम्नो नरकात् त्रायत इति पुत्रः'
-कादम्बरी—अनपत्यता विषाद प्रकरण।

२—'अखिलमपि तत्प्रायेण जीवलोकसुखमनुबभूव, केवलमात्मजाङ्गपरिष्वङ्ग निर्वृति नाध्यगच्छत्'
'विद्वन् ! किम परैस्त्रातैः, आत्मानं त्रायस्व पुन्नाम्नो नरकात्।'
-तिलकमंजरी मेघवाहन राज प्रकरण पृ० ७८-८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाण का, परिसंख्यालंकार के पश्चात् दूसरा प्रिय अलंकार विरोधाभास है जिसके सैकड़ों उदाहरण कादम्बरी में प्राप्त हैं। धनपाल भी विरोधाभास के लिखने में परम प्रवीण प्रतीत होते हैं--(मेघवाहन राजा का वर्णन हैं)---सौजन्यपरतन्त्रवृत्तिरप्यसौजन्ये निषण्णः, नलप्रथुप्रभोऽप्यनलप्रथुप्रभः समिद्व्यतिकर-स्फुरित प्रतापोऽप्यकृशानु भावोपेतः, सागरान्वयप्रभवोऽप्यमृतशीतल प्रकृतिः शत्रुघ्नोऽपि विश्रुतकीर्ति, अशेष शक्त्युपेतोऽपि सकलभूभार धारण क्षमः, रक्षिताखिलक्षिति तपोवनोऽपि त्रातचतुराश्रमः............' (तिलक० पराग० ६२-६३)

तिलकमञ्जरी की विशेषतायें—बाण ने कादम्बरी में कथा के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है-'निरन्तर श्लेष घनाः सुजातयः' (काद० पद्य ६) अर्थात् गद्य काव्य रूप कथा को श्लेषालंकार की बहुलता से निरन्तर व्याप्त होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि धनपाल के समय में कथा की निरन्तरश्लेषघकता' के प्रति लोगों की उपेक्षा हो चली थी। यही कारण है कि धनपाल ने तिलकमंजरी में (पद्य नं० १६) में लिखा कि --'नातिश्लेषघना' श्लाघां कृतिर्लिपिरिवाश्नुते--' अर्थात् अधिक श्लेषों के कारण घन (गाढ़बन्ध वाली) रचना, श्लाघा को प्राप्त नहीं करती। उन्होंने यह भी लिखा है कि--- 'अधिक लम्बे और अनेक पदों से निर्मित समास की बहुलता वाले प्रचुर वर्णनों से युक्त गद्य से लोग घबड़ाकर ऐसे भागते हैं जैसे व्याघ्र को देखकर।' (तिलक० पराग० पद्य नं० १५)। उनका यह भी कहना है कि---'गौडीरीति का अनुसरण कर लिखी गई, निरन्तर गद्य सन्तान वाली कथा श्रोताओं को काव्य के प्रति विराग का कारण बन जाती है अतः रचनाओं में रस की ओर अधिक ध्यान होना चाहिए' (तिलक० पद्य नं० १७-१८)

धनपाल ने उपर्युक्त प्रकार से गद्य काव्य की रचना के सम्बन्ध में जो मत प्रकट किया है, 'तिलकमञ्जरी, में उसका उन्होंने पूर्णरूप से पालन किया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि, तिलकमञ्जरी ने, कादम्बरी की परम्परा को सुरक्षित रखते हुए भी गद्य काव्य को एक ऐसा नया मोड़ दिया है जहां वह विद्वानों के साथ जन साधारण के निकट भी पहुंचने का प्रयत्न करता दिखाई देता है।

पन्यास दक्ष विजय गणि ने दशकुमार, वासवदत्ता और कादम्बरी से तिलकमञ्जरी की विशेषता बताते हुए लिखा है कि[1] दशकुमार चरित में पदलालित्यादि गुणों के होने पर भी कथाओं की—अधिकता के कारण सहृदय के हृदय में व्यग्रता होने लगती है। वासवदत्ता में, प्रत्येक अक्षर में श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि अलंकारों के कारण कथाभाग गौण तथा बिल्कुल अरोचक हैं। यद्यपि कादम्बरी उन दोनों से श्रेष्ठ है तथापि तिलकमञ्जरी कादम्बरी से भी श्रेष्ठ है, इस बात में थोड़ी सी भी अत्युक्ति नहीं। उदाहरणार्थ—

१—पुण्डरीक के शाप से चन्द्ररूप चन्द्रापीड़ के प्राणों के निकल जाने का वर्णन करने से कादम्बरी की कथा में आपाततः अमङ्गल है और इस कारण करुण विप्रलम्भ शृंगार इसका प्रधान रस है, किन्तु तलकमञ्जरी में प्रधान रस पूर्वरागात्मक विप्रलम्भ शृंगार है।

२—कादम्बरी में अगणित विशेषणों के आडम्बर के कारण कथा के रसास्वाद में व्यवधान पड़ता है। तिलकमञ्जरी में तो परिगणित विशेषण होने के कारण वर्णन अत्यन्त चमत्कृत होकर कथा के आस्वाद को और अधिक बढ़ा देता है।

१—तिलक० पराग०—प्रस्तावना पृ० १४-१६.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

३—कादम्बरी के वर्णन-प्रधान होने के कारण उसमें प्रत्येक वर्णन के उचित विशेषणों के गन्वेषण में व्यस्त बाणभट्ट ने कहीं कहीं पर शब्द-सौन्दर्य की उपेक्षा की है, जबकि तिलकमञ्जरी में सर्वोतोमुख काव्योत्कर्ष उत्पन्न करने के इच्छुक धनपाल ने परिसंख्यादि अलंकार वाले स्थलों में भी प्रत्येक पद में शब्दालकार का उचित समावेश किया है। जैसे अयोध्यावर्णन के प्रसंग में 'उच्चापशब्द शत्रु संहारे, न वस्तु विचारे। गुरुवितीर्ण शासनो भक्त्या, न प्रभुशक्त्या। वृद्धत्यागशीलो विवेकेन, प्रजोत्सेकेन। अवनितापहारी पालनेन, न लालनेन। अकृतकारुण्य: करचरणे, न शरणे।' यहां श्लेषानुप्राणितपरिसंख्यालंकार में भी प्रत्येक वाक्य में अन्त्यानुप्रास सुशोभित है।

इसी प्रकार 'सतारकावर्ष इव बेतालदृष्टिभिः, सोल्कापात इव निशितप्रासवृष्टिभिः' यहां युद्ध स्थल के वर्णन में उत्प्रेक्षा के साथ भी।

इसी प्रकार 'सगरान्वयप्रभवोपि·························त्रातचतुराश्रमः' इस प्रवेक्ति विरोधाभास के साथ भी।

इसी प्रकार, वैताढ्य गिरि के वर्णन में—'मेरुकल्पपादपाली-परिगतमपि न मेरुकल्पपादपालीपरिगतम्, वनगजालीसंकुलमपि न वनगजालीसकुलम्' यहां विरोधाभास के साथ यमक भी।

इसी प्रकार, मेघवाहन राजा के वर्णन में 'दृष्ट्वा वैरस्य वैरस्यमुज्झितास्त्रो रिपुव्रजः। यस्मिन् विश्वस्य विश्वस्य कुलस्य कुशलंव्यधात्।' अतिशयोक्ति के साथ यमक भी।

४—तिलकमञ्जरी में, सर्वत्र श्रुत्यनुप्रास के द्वारा सुश्रव्यता उत्पन्न की गई है।

५—कादम्बरी में अन्य स्थानों पर उपलब्ध हो शब्द बार बार सुनाई पड़ते हैं किन्तु तिलकमञ्जरी में 'तनीमेण्ठ-लञ्चा-लाकुटिक-लयनिका-गल्वर्क' प्रभृति अश्रुतपूर्व एवं अपूर्व शब्दों के प्रयोग से कवि ने विशेष चमत्कार उत्पन्न किया है।

धनपाल ने, तिलकमञ्जरी के प्रारम्भिक सत्रह पद्यों में कवि-प्रशस्ति लिखी है। इसमें जिन कवियों तथा रचनाओं की प्रशंसा की गई है वे निम्न प्रकार हैं—

'रघुवंश और कौरववंश की वर्णना के आदिकवि वाल्मीकि एवं व्यास, कथा साहित्य की मूल जननी 'वृहत कथा', वाङ्मय वारिधि के सेतु के समान 'सेतुबन्ध' महाकाव्य के निर्माण से लब्धकीर्ति प्रवरसेन, स्वर्ग और पृथ्वी (गाम्) को पवित्र करने वाले गंगा के समान पाठक की वाणी (गाम्) को पवित्र करने वाली, पादलिप्त सूरि की 'तरंगवती कथा', प्राकृत-रचना के द्वारा रस वर्षाने वाले महाकवि जीवदेव, अपने काव्य-वैभव से अन्य कवियों की वाणी को म्लान कर देने वाले कालिदास, अपने काव्य-प्रतिभा रूप वाण से (अपने पुत्र पुलिन्द के साथ) कवियों को विमद करने वाले तथा कादम्बरी और हर्ष चरित की रचना से लब्धख्याति बाण, माघमास के समान कपिरूप कवियों को पद रचना (कपि के पक्ष में पैर बढ़ाना) में अनुत्साह उत्पन्न करने वाले महाकवि माघ, सूर्य रश्मि (भा-रवि) जैसे प्रतापवान् कवि भारवि, प्रशमरस की अद्भुत रचना समरादित्य-कथा' के प्रणेता हरिभद्रसूरि, अपने नाटकों में सरस्वती को नटी के समान नचाने वाले कवि भवभूति, 'गौडवध' की रचना से कवि जनों की बुद्धि में भय पैदा करने वाले कवि वाक्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पतिराज, समाधि और प्रसाद गुण के धनी यास्यावरकवि राजशेखर, अपनी अलौकिक रचना से कवियों को विस्मय उत्पन्न करने वाले महेन्द्रसूरि, मदान्ध कवियों के मद को चूर्ण करने वाले 'ललित त्रैलोक्य सुन्दरी' के कथाकार कविरुद्र तथा सहृदयाह्लादक सूक्तियों के रचयिता, रुद्रतनय कवि कर्दमराज।'

धनपाल की यह कवि प्रशस्ति तथा उसके साथ, अपने आश्रयदाता श्री मुञ्ज तथा भोज के वंश एवं पूर्वजों की प्रशस्ति के रूप में लिखे गए पद्य, साहित्य और इतिहास, दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। धनपाल की कवि प्रशस्ति सम्बन्धी पद्य, आज तक विद्वज्जनों में बड़े आदर के साथ स्मरण किए जाते हैं।

तिलकमञ्जरी, ११ वीं शताब्दी के सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास की दृष्टि से आलोचनीय ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन समाज एवं कला-कौशल का बड़े ही आकर्षक ढंग से वर्णन किया गया है।[१] यह ग्रन्थ जैन कथा साहित्य तथा जैन संस्कृति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

धनपाल का व्यक्तित्व—संस्कृत साहित्य के पुरातन तथा आधुनिक विद्वान इस बात से पूर्ण सहमत हैं कि धनपाल ने बाण की गद्यशैली का सफल प्रतिनिधित्व किया है। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र तो धनपाल के पाण्डित्य से अत्यन्त प्रभावित थे। जिनमण्डन गणिकृत 'कुमारपाल प्रबन्ध' में कहा गया है कि एक समय हेमचन्द्र ने धनपाल की ऋषभ पञ्चाशिका के पद्यों द्वारा भगवान् आदिनाथ की स्तुति की। राजा कुमारपाल ने उनसे प्रश्न किया कि—'भगवन्! आप तो कलिकाल सर्वज्ञ हैं फिर दूसरों की बनाई गई स्तुति के द्वारा क्यों भगवान् की भक्ति करते हैं?' इस पर हेमचन्द्र बोले—'कुमारदेव! मैं ऐसी अनुपम भक्ति भावनाओं से ओत-प्रोत स्तुतियों का निर्माण नहीं कर सकता।'[२]

हेमचन्द्र ने अपनी रत्नावली नामक देसी नाममाला में प्रसिद्ध कोशकारों का उल्लेख करते समय धनपाल को सबसे प्रथम स्थान दिया है।[3]

संस्कृत साहित्य के योरोपीय विद्वान् एवं प्रसिद्ध समालोचक श्री कीथ महोदय ने लिखा है कि—'धनपाल ने बाण का सफल अनुकरण किया है। समरकेतु के प्रति तिलकमंजरी के प्रेम का वर्णन करने में उनका स्पष्ट रूप से यही लक्ष्य रहा है कि कादम्बरी के समान अधिकाधिक चित्र खींचे जा सकें।[४] श्रीबलदेव उपाध्याय, एच० आर० अग्रवाल, डा० रामजी उपाध्याय और वाचस्पति गैरोला प्रभृति संस्कृति के आधुनिक विद्वान् भी कीथ महोदय के कथन की पूर्ण समर्थन करते हैं।[५]

१—वाचस्पति गैरोला, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृ० ६३४.

२—'श्री कुमार देव ! एवंविधसद्भूतभक्तिगर्भास्तुतिरस्माभिः कर्तुं न शक्यते'

३—डा० जगदीशचन्द्र जैन—'प्राकृत साहित्य का इतिहास', पृष्ठ ६५५.

४—'संस्कृत साहित्य का इतिहास'—कीथ (अनुवादक डा० मंगलदेव शास्त्री) पृ० ३६१

५—बलदेव उपाध्याय, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' १६४५, पृ० २६८. एच० आर० अग्रवाल, Short History of Sanskrit Literature' लाहोर, पृ० १५६. डा० रामजी उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृ० १७५ वाचस्पति गैरोला—'संस्कृत साहित्य का इतिहास' पृ० ६३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यासप्तशती में लिखा है कि—'प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी बाणो बभूवेति' अर्थात्—अधिक प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए सरस्वती ने मानो बाण का शरीर धारण कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कवि गोवर्धन की इस उक्ति को ध्यान में रखकर ही मुञ्जदेव ने, बाण के समान सिद्ध सारस्वत धनपाल को सरस्वती' की उपाधि प्रदान की थी[६] कहा जाता है कि मुञ्जदेव का धनपाल पर अत्यन्त स्नेह था। वे उन्हें अपना 'कृत्रिम पुत्र' मानते थे।

राज्याश्रय में रहने पर भी धनपाल अत्यन्त निर्भीक एवं स्वाभिमानी थे। उन्होंने राजा के कोप की भी उपेक्षा करके सदैव उचित मार्ग का अवलम्बन किया। भोजराज द्वारा, तिलक मंजरी के नायक के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किए जाने की इच्छा व्यक्त करने पर धनपाल ने कहा था—

'राजन् ! जिस प्रकार खद्योत और सूर्य में, सरसों और सुमेरू में, कांच और काञ्चन में, धतूरे और कल्पवृक्ष में महान् अन्तर है उसी प्रकार तिलकमञ्जरी के नायक और आप में।'[७]

धनपाल का हृदय अत्यन्त दयार्द्र था। एक समय मृगया के प्रसङ्ग में भोजराज द्वारा मारे गये मृग को देखकर उन्होंने राजा को सम्बोधित करते हुए कहा था—

रसातले यातु तवात्र पौरुषं कुनीतिरेणा शरणो ह्यदोषवान्।
निहन्यते यद् बलिनापि दुर्बलां हहा महाकष्टमराजकं जगत्॥'

अर्थात्—हे राजन् ! इस प्रकार का आपका पौरुष रसातल को चला जाय। निर्दोष और शरणागत का वध कुनीति है। बलवान् भी जब दुर्बल को मारते हैं तो यह बड़े दुःख की बात है, मानो समस्त जगत् ही अराजक हो गया। कहा जाता है कि धनपाल के ये वचन सुनकर भोजराज ने आजीवन मृगया छोड़ दी थी।[८]

इसी प्रकार, एक समय यज्ञ मंडप में यूप (स्तम्भ) से बन्धे छाग (बकरे) के करुण क्रन्दन को सुनकर धनपाल ने कहा था कि—

यूपं कृत्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिर कर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते।
सत्यं यूपं तपो ह्यग्निः, कर्माणि समिधो मम।
अहिंसामाहुतिं दद्यादेवं यज्ञः सतां मतः।

अर्थात्—यदि यज्ञ करके पशुओं को मारकर और खून का कीचड़ बनाकर स्वर्ग में जाया जाता है तो फिर नरक में कैसे जाया जाता है ? ज्ञानीजनों का यज्ञ तो वह है जिसमें सत्य यूप हो, तप अग्नि हो, कर्म समिधा हो और अहिंसा जिसकी आहूति हो। कहते हैं राजा ने धनपाल के ये वचन सुनकर अपने को जैन धर्म में दीक्षित किया था।[९]

६—'श्री मुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः' तिलकमञ्जरी पद्य नं० ५३.
७—प्रबन्ध चिन्तामणि (महाकवि धनपाल प्रबन्ध)
८— वही
९— वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनपाल महान् गुणग्राही थे। अनेक अवसरों पर भोजराज को झिड़कियां देकर सावधान करते रहने के अतिरिक्त उन्होंने अनेक बार उनके गुणों की प्रशंसा भी की है—

अभ्युद्धृता वसुमती दलितं रिपूरः, क्रोडीकृता बलवता बलिराजलक्ष्मीः ।
एकत्र जन्मनि कृतं तदनेन यूना, जन्मत्रये यदकरोत् पुरुषः पुराणः ।।

अर्थात्—इसने अपने जन्म में पृथ्वी का उद्धार किया, शत्रुओं के वक्षस्थल को विदीर्ण किया और अनेक बलशाली राजाओं की राजलक्ष्मी (विष्णु के पक्ष में बलि नामक राजा की राजलक्ष्मी) को आत्मसात् किया। इस प्रकार इस युवक ने वे काम एक ही जन्म में कर डाले जो पुराण पुरुष विष्णु ने तीन जन्मों में किए थे। कहा जाता है कि भोजराज ने इस पद को सुनकर धनपाल को एक स्वर्ण कलश भेंट किया था।[1]

तिलकमञ्जरी को अग्नि में स्वाहा कर देने के कारण धनपाल, भोजराज से रूठकर, धारा नगरी को छोड़ अन्यत्र चल दिए। कुछ दिनों के पश्चात् उनकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। भोज ने उन्हें पुनः सादर निमंत्रित किया और उनसे कुशलक्षेम पूछा। धनपाल ने निवेदन किया—

पृथुकार्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेष परिजनं देव।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममानयोः सदनम् ।।'

अर्थात्—हे राजन्! इस समय हमारा और आपका घर बिल्कुल समान है, क्योंकि दोनों ही 'पृथुकार्तस्वरपात्र' (गम्भीर आर्तनाद का पात्र तथा विपुल स्वर्ण पात्र वाला) है, दोनों ही—'भूषितनिःशेषपरिजन' है (अलंकारहीन परिजन वाला तथा जिसके सारे परिजन आभूषणों से युक्त है) और दोनों ही 'विलसत्करेणुगहन' (धूलिपूर्ण और हाथियों से सुसज्जित) है।

यह श्लोक श्लेषालंकार के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण के रूप में आज भी विद्वज्जनों में पर्याप्त प्रसिद्ध है। साथ ही यह धनपाल के स्वाभिमान की ओर पूर्ण संकेत करता है।[2]

भोजराज ने सरस्वती कण्ठाभरण में लिखा है—'यादग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः' अर्थात् बाण, जितना गद्य बनाने में कुशल है इतना पद्य बनाने में नहीं। धनपाल की यह विशेषता है कि वे समान रूप से गद्य और पद्य, दोनों की प्रौढ़ रचना करने में समर्थ थे। हेमचन्द्र ने अपनी अभिधान चिन्तामणि, काव्यानुशासन और छन्दोऽनुशासन में धनपाल के अनेक सुन्दर पद्यों का उल्लेख किया है। १४ वीं शताब्दी की रचना (सूक्तिसङ्कलन) 'शार्ङ्गधरपद्धति' में धनपाल की अनेक सूक्तियों का उल्लेख है।[3]

इसी प्रकार मुनि सुन्दरसूरि ने 'उपदेश रत्नाकर' में और वाग्भट्ट ने अपने 'काव्यानुशासन' में अनेक स्थानों पर धनपाल के पद्यों का उल्लेख किया है। 'कीर्तिकौमुदी' एवं 'अमर चरित' के रचयिता मुनि रत्न सूरि और 'पञ्चलिङ्गी प्रकरण' के कर्ता श्री जिनेन्द्रसूरि ने धनपाल के काव्य की प्रशस्ति गाई है।[4]

१—प्रबन्ध चिन्तामणि (महाकवि धनपाल प्रबन्ध)
२—प्रबन्ध चिन्तामणि (महाकवि धनपाल प्रबन्ध)
३—डा० जगदीशचन्द्र जैन—प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६५५.
४—तिलक मञ्जरी पराग० प्रस्तावना पृ० २८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत विद्वानों में यह कहा जाता रहा है कि 'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वं' अर्थात्—बाण के अनन्तर समस्त संस्कृत साहित्य बाण के उच्छिष्ट (त्यक्त वस्तु) के समान है। बाण की प्रशस्ति में लिखे गये ये पद्य—

'कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः' श्रीचन्द्रदेव (शार्ङ्गधर पद्धति ११७)
'युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वानावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ।।' कीर्ति कौमुदी १,१५.
'बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य,
शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति। कीथ का इतिहास पृ० ३६७

इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि बाण की अप्रतिम गद्य रचना 'कादम्बरी' को देखकर किसी कवि का साहस नहीं होता था कि वह बाण के मार्ग पर चलकर उनकी गद्य रचना शैली को आगे बढ़ाये। यही कारण है कि बाण के पश्चात् लगभग ३०० वर्षों तक कादम्बरी की समानता करने वाली कोई उत्कृष्ट गद्य रचना उपलब्ध नहीं है।

महाकवि धनपाल ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने कवियों के हृदय से, बाण के भय-व्यामोह को दूर किया और अपनी तिलकमञ्जरी को कादम्बरी की श्रेणी में बिठाने का प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि धनपाल के पश्चात् वादीभसिंह (गद्य चिन्तामणि), सोड्ढ़यल (उदय सुन्दरी कथा), बामन भट्ट बाण (वेम-भूपाल चरित-हर्ष चरित के अनुकरण पर) आदि कवियों ने बाण की शैली पर रचनायें लिखीं।[1]

तिलकमञ्जरी की रचना के लगभग एक शताब्दि के पश्चात् पूर्ण तल्लगच्छीय श्री शान्तिसूरि ने इस ग्रन्थ पर १०५० श्लोक प्रमाण टिप्पणी की रचना की जो पाटन के जैन भण्डार की प्रति[2] के अन्त में दिए गए निम्न श्लोक से प्रमाणित है—

श्री शान्तिसूरिरिह श्रीयति पूर्णतल्ले गच्छे वरो मतिमतां बहुशास्त्रवेत्ता।
तेनामलं विरचितं बहुधा विमृश्य संक्षेपतो वरमिदं बुध टिप्पितंभोः ।।

इस ग्रन्थ पर श्री विजय लावण्य सूरि ने (विक्रम संवत् २००८ में प्रकाशित) पराग नामक एक विस्तृत टीका लिखी है।[3]

धनपाल, विक्रम की ११ वीं शताब्दि के संस्कृत और प्राकृत भाषा के उत्कृष्ट विद्वान थे। गद्य और पद्य दोनों की रचना पर उनका समान अधिकार था। शब्द और अर्थ, भाषा और भाव, वशीभूत के समान उनकी लेखनी का अनुगमन करते थे। उन्होंने बाण की गद्य शैली की परम्परा को निबाहते हुए, गद्य काव्य को कुछ और सरल और सरस बनाकर उसे जनता के अधिक निकट पहुँचाने का प्रयत्न किया। निःसंदेह, धनपाल अपने इस ऐतिहासिक कार्य के लिए संस्कृत साहित्य के इतिहास में अमर रहेंगे। किसी कवि का यह कथन धनपाल के लिए अत्यन्त उचित प्रतीत होता है—

तिलकमञ्जरी मञ्जरिसञ्भरिलोलहिपश्चिदन्मिजालः।
जैनारण्येऽसालः कोऽपि रसालः पपाल धनपालः ।।[4]

१—बामदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २६८.

२—पाटन के 'संघवीपाड़ा जैन भण्डार' की १२५ वीं प्रति (गायक वाड़ ओरियण्टल सिरीज नं० ७६—'पाटन जैन भण्डार केटलाग' प्रथम भाग, पृष्ठ ८७)

३—तिलकमञ्जरी, श्री शान्तिसूरि रचित टिप्पणी तथा श्री विजय लावण्य-सूरि रचित टीका (पराग) के साथ प्रकाशित। प्रकाशक—श्री विजयलावण्य-सूरिश्वर ज्ञान मन्दिर, बोटाद, सौराष्ट्र, वि० सं० २००८.

४—तिलक० पराग० प्रस्तावना—पृ० १६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org